ओ३म्

'स्वामी दयानन्द और हिन्दी'

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

भारतवर्ष के इतिहास में महर्षि दयानन्द पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने पराधीन भारत में सबसे पहले राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता के लिए हिन्दी को सर्वाधिक महत्वपूर्ण जानकर मन, वचन व कर्म से इसका प्रचार–प्रसार किया। उनके प्रयासों का ही परिणाम था कि हिन्दी शीघ्र लोकप्रिय हो गई। यह ज्ञातव्य है कि हिन्दी को स्वामी दयानन्द जी ने आर्यभाषा का नाम दिया था। स्वतन्त्र भारत में 14 सितम्बर 1949 को सर्वसम्मति से हिन्दी को राजभाषा स्वीकार किया जाना भी स्वामी दयानन्द के इससे 77 वर्ष पूर्व आरम्भ किए गये कार्यों का ही सुपरिणाम था। प्रसिद्ध हिन्दी साहित्यकार विष्णु प्रभाकर हमारे राष्ट्रीय जीवन के अनेक पहलुओं पर स्वामी दयानन्द का अक्षुण प्रभाव स्वीकार करते हैं और हिन्दी पर साम्राज्यवादी होने के आरोपों को अस्वीकार करते हुए कहते हैं कि यदि साम्राज्यवाद शब्द का हिन्दी वालों पर कुछ प्रभाव है भी, तो उसका सारा दोष अहिन्दी भाषियों का है। इन अहिन्दीभाषियों का अग्रणीय वह स्वामी दयानन्द को मानते हैं और लिखते हैं कि इसके लिए उन्हें प्रेरित भी किसी हिन्दी भाषी ने नहीं अपितु एक बंगाली सज्जन श्री केशवचन्द्र सेन ने किया था।

स्वामी दयानन्द का जन्म 12 फरवरी, 1825 में गुजरात राज्य के राजकोट जनपद में होने के कारण गुजराती उनकी स्वाभाविक रूप से मातृभाषा थी। उनका अध्ययन–अध्यापन संस्कृत में हुआ था, इसी कारण वह संस्कृत में ही वार्तालाप, व्याख्यान, लेखन, शास्त्रार्थ तथा शंका–समाधान आदि किया करते थे। 16 दिसम्बर, 1872 को स्वामी जी वैदिक मान्यताओं के प्रचारार्थ भारत की तत्कालीन राजधानी कलकत्ता पहुंचे थे और वहां उन्होंने अनेक सभाओं में व्याख्यान दिये। ऐसी ही एक सभा में स्वामी दयानन्द के संस्कृत भाषण का बंगला में अनुवाद गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज, कलकत्ता के उपाचार्य पं. महेश चन्द्र न्यायरत्न कर रहे थे। अनुवाद ने अनेक स्थानों पर स्वामी जी के व्याख्यान को अनुदित न कर उसमें अपनी विपरीत मान्यताओं को श्री न्यायरत्न ने प्रकट किया जिससे संस्कृत कालेज के श्रोताओं ने उनका विरोघ किया। विरोध के कारण श्री न्यायरत्न बीच में ही सभा छोड़कर चले गये थे। बाद में **स्वामी दयानन्द जी को श्री केशवचन्द्र सेन ने सुझाव दिया कि वह संस्कृत के स्थान पर हिन्दी को अपनायें।** स्वामी दयानन्द जी ने तत्काल यह सुझाव स्वीकार कर लिया। **यह दिन हिन्दी के इतिहास की एक प्रमुख घटना थी कि जब एक 47 वर्षीय गुजराती मातृभाषा के संस्कृत के विश्वविख्यात वैदिक विद्वान स्वामी दयानन्द ने तत्काल हिन्दी को अपना लिया। ऐसा दूसरा उदाहरण इतिहास में अनुपलब्ध है। इसके पश्चात स्वामी दयानन्द जी ने जो प्रवचन किए उनमें वह हिन्दी का प्रयोग करने लगे।**

सत्यार्थ प्रकाश स्वामी जी की विश्व प्रसिद्ध रचना और पूर्ण वैज्ञानिक अर्थात् तर्क, युक्ति व प्रमाणयुक्त धर्म ग्रन्थ है जो देश–विदेश में विगत 141 वर्षों से उत्सुकता एवं श्रद्धा से पढ़ा जाता है। फरवरी, 1872 में हिन्दी को अपने व्याख्यानों व ग्रन्थों के लेखन की भाषा के रूप में स्वीकार करने के लगभग 2 वर्ष पश्चात ही स्वामी जी ने 2 जून 1874 को उदयपुर में इस सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ के प्रथम आदिम सत्यार्थ प्रकाश का प्रणयन आरम्भ किया और लगभग 3 महीनों में पूरा कर डाला। **श्री विष्णु प्रभाकर इतने अल्प समय में स्वामी जी द्वारा हिन्दी में सत्यार्थ प्रकाश जैसा उच्च कोटि का ग्रन्थ लिखने पर इसे आश्चर्यजनक घटना मानते हैं।** सत्यार्थ प्रकाश के पश्चात स्वामी जी ने अनेक ग्रन्थ लिखे जो सभी हिन्दी में हैं। उनके ग्रन्थ उनके जीवन काल में ही देश की सीमा पार कर विदेशों में भी लोकप्रिय हुए। **विश्व विख्यात विद्वान प्रो. मैक्समूलर ने स्वामी दयानन्द की पुस्तक ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पढ़कर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखा कि वैदिक साहित्य का आरम्भ ऋग्वेद से एवं अन्त स्वामी दयानन्द जी की ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पर होता है। प्रो. मैक्समूलर की स्वामी दयान्द को यह प्रशस्ति उनके वेद विषयक ज्ञान, उनके कार्यों, वेदों के प्रचार–प्रसार के प्रति योगदान एवं उनके गौरव के**

अनुरूप है। स्वामी दयानन्द के सत्यार्थ प्रकाश एवं अन्य ग्रन्थों को इस बात का गौरव प्राप्त है कि धर्म, दर्शन एवं संस्कृति जैसे क्लिष्ट व विशिष्ट विषय को सर्वप्रथम उनके द्वारा हिन्दी में प्रस्तुत कर उसे सर्व जन सुलभ किया गया जबकि इससे पूर्व इस पर संस्कृत निष्णात ब्राह्मण वर्ग का ही एकाधिकार था जिसमें इन्हें संकीर्ण एवं संकुचित कर दिया था और वेदों का लाभ जनसाधारण को नहीं मिल सका जिसके वह अधिकारी थे।

थियोसोफिकल सोसायटी की नेत्री मैडम बैलेवेटेस्की ने स्वामी दयानन्द से उनके हिन्दी में लिखित ग्रन्थों के अंग्रेजी अनुवाद की अनुमति मांगी तो **स्वामी दयानन्द जी ने उन्हें 31 जुलाई, 1879 को विस्तृत पत्र लिख कर अनुवाद से हिन्दी के प्रचार–प्रसार एवं प्रगति में आने वाली बाधाओं से परिचित कराया। स्वामी जी ने लिखा कि अंग्रेजी अनुवाद सुलभ होने पर देश–विदेश में जो लोग उनके ग्रन्थों को समझने के लिए संस्कृत व हिन्दी का अध्ययन कर रहे हैं, वह समाप्त हो जायेगा। हिन्दी के इतिहास में शायद कोई विरला ही व्यक्ति होगा जिसने अपनी हिन्दी पुस्तकों का अनुवाद इसलिए नहीं होने दिया जिससे अनुदित पुस्तक के पाठक हिन्दी सीखने से विरत होकर हिन्दी प्रसार में बाधक बनेंगे।**

हरिद्वार में एक बार व्याख्यान देते समय पंजाब के एक श्रद्धालु भक्त द्वारा स्वामी जी से उनकी पुस्तकों का उर्दू अनुवाद कराने की प्रार्थना करने पर **उन्होंने आवेशपूर्ण शब्दों में कहा था कि अनुवाद तो विदेशियों के लिए हुआ करता है। देवनागरी के अक्षर सरल होने से थोड़े ही दिनों में सीखे जा सकते हैं। हिन्दी भाषा भी सरल होने से सीखी जा सकती है। हिन्दी न जानने वाले एवं इसे सीखने का प्रयत्न न करने वालों से उन्होंने पूछा कि जो व्यक्ति इस देश में उत्पन्न होकर यहां की भाषा हिन्दी को सीखने में परिश्रम नहीं करता उससे और क्या आशा की जा सकती है?** श्रोताओं को सम्बोधित कर उन्होंने कहा, **''आप तो मुझे अनुवाद की सम्मति देते हैं परन्तु दयानन्द के नेत्र वह दिन देखना चाहते हैं जब कश्मीर से कन्याकुमारी और अटक से कटक तक देवनागरी अक्षरों का प्रचार होगा।''** इस स्वर्णिम स्वप्न के द्रष्टा स्वामी दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में एक स्थान पर लिखा कि **आर्यावर्त्त (भारत वर्ष का प्राचीन नाम) भर में भाषा का एक्य सम्पादन करने के लिए ही उन्होंने अपने सभी ग्रन्थों को आर्य भाषा (हिन्दी) में लिखा एवं प्रकाशित किया है।** अनुवाद के सम्बन्ध में अपने हृदय में हिन्दी के प्रति सम्पूर्ण प्रेम को प्रकट करते हुए वह कहते हैं, **''जिन्हें सचमुच मेरे भावों को जानने की इच्छा होगी, वह इस आर्यभाषा को सीखना अपना कर्तव्य समझेंगे।''** यही नहीं आर्य समाज के प्रत्येक सदस्य के लिए उन्होंने हिन्दी सीखना अनिवार्य किया था। भारत वर्ष की तत्कालीन अन्य संस्थाओं में हम ऐसी कोई संस्था नहीं पाते जहां एकमात्र हिन्दी के प्रयोग की बाध्यता हो।

सन् 1882 में ब्रिटिश सरकार ने डा. हण्टर की अध्यक्षता में एक कमीशन की स्थापना कर उससे राजकार्य के लिए उपयुक्त भाषा की सिफारिश करने को कहा। यह आयोग हण्टर कमीशन के नाम से जाना गया। यद्यपि उन दिनों सरकारी कामकाज में उर्दू–फारसी एवं अंग्रेजी का प्रयोग होता था परन्तु स्वामी दयानन्द के सन् 1872 से 1882 तक व्याख्यानों, ग्रन्थों, शास्त्रार्थों तथा आर्य समाजों द्वारा वेद प्रचार एवं उसके अनुयायियों की हिन्दी निष्ठा से हिन्दी भी सर्वत्र लोकप्रिय हो गई थी। इस हण्टर कमीशन के माध्यम से हिन्दी को राजभाषा का स्थान दिलाने के लिए स्वाामी जी ने देश की सभी आर्य समाजों को पत्र लिखकर बड़ी संख्या में हस्ताक्षरों से युक्त ज्ञापन इण्टर कमीशन को भेजने की प्रेरणा की और जहां से ज्ञापन नहीं भेजे गये उन्हें स्मरण पत्र भेज कर सावधान और पुनः प्रेरित किया। आर्य समाज फर्रूखाबाद के स्तम्भ बाबू दुर्गादास को भेजे पत्र में स्वामी जी ने लिखा, **''यह काम एक के करने का नहीं है और अवसर चूके यह अवसर आना दुर्लभ है। जो यह कार्य सिद्ध हुआ (अर्थात् हिन्दी राजभाषा बना दी गई) तो आशा है, मुख्य सुधार की नींव पड़ जावेगी।''** स्वामी जी की प्रेरणा के परिणामस्वरुप देश के कोने–कोने से आयोग को बड़ी संख्या में लोगों ने हस्ताक्षर कराकर ज्ञापन भेजे। **कानपुर से हण्टर कमीशन को दो सौ मैमोरियल भेज गए जिन पर दो लाख लोगों ने हिन्दी को राजभाषा बनाने के पक्ष में हस्ताक्षर किए थे। हिन्दी को गौरव प्रदान करने के लिए स्वामी दयानन्द द्वारा किया गया यह कार्य भी इतिहास की अन्यतम घटना है।** स्वामी दयानन्द की प्रेरणा से जिन प्रमुख लोगों ने हिन्दी सीखी उनमें जहां अनेक रियासतों के राज परिवारों के सदस्य हैं वहीं कर्नल एच. ओ. अल्काट आदि विदेशी महानुभाव भी हैं जो इंग्लैण्ड में स्वामी जी की प्रशंसा सुनकर उनसे मिलने भारत आये थे। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि शाहपुरा, उदयपुर,

जोधपुर आदि अनेक स्वतन्त्र रियासतों के महाराजा स्वामी दयानन्द के अनुयायी थे और स्वामी जी की प्रेरणा पर उन्होंने अपनी रियासतों में हिन्दी को राज भाषा का दर्जा दिया था।

स्वामी दयानन्द संस्कृत व हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के जानने व पढ़ने के पक्षधर भी थे, विरोधी किसी भाषा के नहीं थे। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि जब पुत्र–पुत्रियों की आयु पांच वर्ष हो जाये तो उन्हें देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें, **अन्यदेशीय भाषाओं के अक्षरों का भी।** एक अन्य प्रकरण में आदिम सत्यार्थ प्रकाश में मूर्तिपूजा के इतिहास से परिचय कराने के साथ इस मूर्तिपूजा से आयी गुलामी के प्रसंग में अन्यदेशीय भाषाओं के अध्ययन के समर्थन में उन्होंने विस्तार से लिखा है। यह पूरा प्रसंग इसकी महत्ता के कारण प्रस्तुत है। वह लिखते है कि **'न वदेद्यावनीं भाषां प्राणैः कण्ठगतैरपि। हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम्।।1।।'** इत्यादि श्लोक (हमारे मूर्तिपूजक बन्धुओं ने) बनाए हैं कि मुसलमानों की भाषा बोलनी और सुननी भी नहीं चाहिए और यदि पागल हाथी मूर्तिपूजक सनातनी के पीछे मारने को दौड़े, तो यदि वह किसी जैन मन्दिर में जाने से बच सकता हो, तो भी जैन के मन्दिर में न जायें किन्तु हाथी के सन्मुख मर जाना उससे (अर्थात् जैन मन्दिर में जाने से) अच्छा है, ऐसे निन्दा के श्लोक बनाए हैं। सो पुजारी, पण्डित और सम्प्रदायी लोगों ने चाहा कि इनके खण्डन के विना हमारी आजिविका न बनेगी। यह केवल उनका मिथ्याचार है। **मुसलमानों की भाषा पढ़ने में अथवा कोई देश की भाषा पढ़ने में कुछ दोष नहीं होता, किन्तु कुछ गुण ही होता है। 'अपशब्दज्ञानपूर्वके शब्दज्ञाने धर्मः।'** यह व्याकरण महाभाष्य (आन्हिक 1) का वचन है। इसका यह अभिप्राय है कि **अपशब्द ज्ञान अवश्य करना चाहिए, अर्थात् सब देश देशान्तर की भाषा को पढ़ना चाहिए, क्योंकि उनके पढ़ने से बहुत व्यवहारों का उपकार होता है और संस्कृत शब्द के ज्ञान का भी उनको यथावत् बोध होता है। जितनी देशों की भाषायें जानें, उतना ही पुरुष को अधिक ज्ञान होता है, क्योंकि संस्कृत के शब्द बिगड़ के सब देश भाषायें होती वा बनती हैं, इससे इनके ज्ञानों से परस्पर संस्कृत और भाषा के ज्ञान में उपकार ही होता है।** इसी हेतु महाभाष्य में लिखा कि अपशब्द–ज्ञानपूर्वक शब्दज्ञान में धर्म होता है अन्यथा नहीं। क्योंकि जिस पदार्थ का संस्कृत शब्द जानेगा और उसके भाषा शब्द को न जानेगा तो उसको यथावत् पदार्थ का बोध और व्यवहार भी नहीं कर सकेगा। **तथा महाभारत में लिखा है कि युधिष्ठिर और विदुर आदि अरबी आदि देश भाषा को जानते थे। इस लिए जब युधिष्ठिर आदि लाक्षा गृह की ओर चले, तब विदुर जी ने युधिष्ठिर जी को अरबी भाषा में समझाया और युधिष्ठिर जी ने अरबी भाषा से प्रत्युत्तर दिया, यथावत् उसको समझ लिया।** तथा राजसूय और अश्वमेध यज्ञ में देश–देशान्तर तथा द्वीप–द्वीपान्तर के राजा और प्रजास्थ पुरुष आए थे। उनका परस्पर अनेक देश भाषाओं में व्यवहार होता था तथा द्वीप–द्वीपान्तर में यहां के प्रजाजन जाते थे और वहां के इस देश में आते थे फिर जो देश–देशान्तर की भाषा न जानते तो उनका व्यवहार सिद्ध कैसे होता? **इससे क्या आया कि देश–देशान्तर की भाषा के पढ़ने और जानने में कुछ दोष नहीं, किन्तु बड़ा उपकार ही होता है।** विश्व की सभी भाषाओं के अध्ययन के पक्षधर स्वामी दयानन्द देश की सभी प्रादेशिक भाषाओं को हिन्दी व संस्कृत की भांति देवनागरी लिपि में लिखे जाने के समर्थक थे जो राष्ट्रीय एकता की पूरक होती। उन्होंने एक प्रसंग में यह भी कहा था कि दयानन्द की आंखे वह दिन देखना चाहती हैं जब कश्मीर से कन्याकुमारी तक देश में चहुंओर देवनागरी अक्षरों का प्रचार व प्रयोग हो, इसका उल्लेख पूर्व भी कर चुके हैं। अपने जीवन काल में स्वामी ने हिन्दी पत्रकारिता को भी नई दिशा दी। **आर्य दर्पण (शाहजहांपुर : 1878), आर्य समाचार (मेरठ : 1878), भारत सुदशा प्रवर्तक (फर्रूखाबाद : 1879), देश हितैषी (अजमेर : 1882) आदि अनेक हिन्दी पत्र आपकी प्रेरणा से प्रकाशित हुए एवं पत्रों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई।**

स्वामी दयानन्द ने हिन्दी में जो पत्रव्यवहार किया वह भी संख्या की दृष्टि से किसी एक धार्मिक विद्वान व नेता द्वारा किए गए पत्रव्यवहार में आज भी सर्वाधिक है। स्वामी जी के पत्र व्यवहार की खोज, उनकी उपलब्धि एवं सम्पादन कार्य में रक्तसाक्षी पं. लेखराम, स्वामी श्रद्धानन्द, रिसर्च स्कालर पं. भगवद्दत्त, पं. युधिष्ठिर मीमांसक एवं श्री मामचन्द जी का विशेष योगदान रहा। शायद ही स्वामी दयानन्द से पूर्व किसी धार्मिक नेता के पत्रों की ऐसी खोज कर उन्हें क्रमवार सम्पादित कर पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया हो और जीवन चरित्र आदि के सम्पादन में इन पत्रों से सहायता ली गई हो। स्वामी जी का समस्त पत्रव्यवहार चार खण्डों में पं. युधिष्ठिर मीमांसक के सम्पादकत्व में प्रकाशित है जो वैदिक साहित्य के प्रमुख प्रकाशक मैसर्स श्रीरामलाल कपूर ट्रस्ट, रेवली (हरयाण) से

उपलब्ध है। इसके अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। इसका एक अद्यतन संशोधित संस्करण परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है जिसका सम्पादन आर्यजगत के विख्यात विद्वान डा. वेदपाल जी ने किया है और इसके शुद्ध व निर्दोष रूप में प्रकाशित किये जाने में आर्य विद्वान प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु जी, अबोहर की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। यह भी ज्ञातव्य है कि स्वामी दयानन्द पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने सर्वप्रथम अपनी आत्म–कथा लिखी। इस आत्म–कथा के हिन्दी में होने के कारण हिन्दी को ही इस बात का गौरव है कि आत्म–कथा साहित्य का शुभारम्भ हिन्दी व स्वामी दयानन्द से हुआ। सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर से वेदों के द्वारा ज्ञान की उत्पत्ति हुई थी। स्वामी दयानन्द के समय तक वेदों का भाष्य–व्याख्यायें–प्रवचन–लेखन–शास्त्रार्थ आदि संस्कृत में ही होता आया था। स्वामी जी पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने वेदों का भाष्य जन–सामान्य की भाषा संस्कृत सहित हिन्दी में करके सृष्टि के आरम्भ से प्रवाहित धारा को उलट दिया। यह घटना जहां वैदिक धर्म व संस्कृति की रक्षा से जुड़ी है, वहीं भारत की एकता व अखण्डता से भी जुड़ी है। न केवल वेदों का ही उन्होंने हिन्दी में भाष्य किया अपितु मनुस्मृति एवं अन्य शास्त्रीय ग्रन्थों का अपनी पुस्तकों में उल्लेख करते समय उद्धरणों के हिन्दी में अर्थ भी किए हैं। वेदों का हिन्दी में भाष्य करके उन्होंने पौराणिक हिंन्दू समाज से ब्राह्मणों के शास्त्राध्ययन पर एकाधिकार को भी समाप्त कर जन–जन को इसका अधिकारी बनाया। यह कोई छोटी बात नहीं अपितु बहुत बड़ी बात है जिसका मूल्याकंन नहीं किया जा सकता। महर्षि दयानन्द के प्रयासों से ही आज वेद एवं समस्त शास्त्रों का अध्ययन हिन्दू व इतर समाज की किसी भी जन्मना जाति, मत व सम्प्रदाय का व्यक्ति कर सकता है। आर्यसमाज ने उन सबके लिए वेदाध्ययन व अपने गुरुकुलों के दरवाजे खोले हुए हैं। महर्षि दयानन्द द्वारा हिन्दी को लोकप्रिय बनाकर उसे राष्ट्र भाषा के गौरवपूर्ण स्थान तक पहुंचाने में उनके साथ ही उनके द्वारा स्थापित आर्य समाजों एवं उनकी प्रेरणा से उनके अनुयायियों द्वारा स्थापित बड़ी संख्या में गुरूकुलों, डी.ए.वी. कालेजों व अनेक आर्य संस्थाओं आदि का भी योगदान है। एक शताब्दी से अधिक समय पूर्व गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार में देश में सर्वप्रथम विज्ञान, गणित सहित सभी विषयों की पुस्तकें हिन्दी माध्यम से तैयार कर उनका सफल अध्ययन–अध्यापन किया कराया गया। इस्लाम की धर्म–पुस्तक कुरआन को हिन्दी में सबसे पहले अनुंदित कराने का श्रेय भी स्वामी दयानन्द जी को है। यह अनुदित ग्रन्थ उनकी उत्तराधिकारिणी परोपकरिणी सभा, अजमेर के पुस्तकालय में आज भी सुरक्षित है।

ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में स्वामी दयानन्द जी ने लिखा है कि जो व्यक्ति जिस देश भाषा को पढ़ता है उसको उसी भाषा व उसके साहित्य का संस्कार होता है। अंग्रेजी व अन्यदेशीय भाषायें पढ़ा व्यक्ति मानवीय मूल्यों पर आधारित भारतीय संस्कृति से सर्वथा दूर पाश्चात्य एवं वाममार्गी आदि भिन्न भिन्न जीवन शैलियों के अनुसार जीवन यापन करता है। यह जीवन पद्धतियां उच्च मर्यादाओं की दृष्टि से भारतीय संस्कृति से निम्नतर हैं। यदि वह संस्कृत व हिन्दी दोनों को पढ़ते और विवेक से निश्चय करते तो अवश्य ही वैदिक मर्यादाओं का पालन करते। कुछ ऐसी जीवन शैलियां है जिनमें पशुओं पर दया के स्थान पर उनको भोजन में सम्मलित किया गया है, हो सर्वसम्मत अंहिसा का नहीं अपितु हिंसा का उदाहरण है। जीवन में हिंसा का किसी भी रूप में प्रयोग अपसंस्कृति है और अंहिसा ही संस्कृति है। अतः स्वामी जी का यह निष्कर्ष भी उचित है कि हिन्दी व संस्कृत को प्रवृत्त कर ही प्राचीन संस्कृति, सभ्यता, साहित्य, इतिहास व मानवीय मूल्यों की रक्षा की जा सकती है।

एक षडयन्त्र के अन्तर्गत विष देकर दीपावली 1883 के दिन स्वामी दयानन्द की जीवन लीला समाप्त कर दी गई। यदि स्वामी जी कुछ वर्ष और जीवित रहे होते तो हिन्दी को और अधिक समृद्ध करते और इसका व्यापक प्रचार करते तथा तीव्र वेद प्रचार आदि कार्यों से देश की अधिक उन्नति व सुख–समृद्धि होती। इसी के साथ इस लेख को निम्न पंक्तियों के साथ विराम देते हैं।

'कलम आज तू स्वामी दयानन्द की जय बोल,
हिन्दी प्रेमी रत्न वह कैसे थे अनमोल।'

–मनमोहन कुमार आर्य
पताः 196 चुक्खूवाला–2
देहरादून–248001
फोनः09412985121 i